इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में आदिवासी नारी के बदलते आयाम

स्नेहलता,

शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कथित विकास की प्रक्रिया में हुए परिवर्तनों से आदिवासी स्त्री भी अछूती नहीं रही है। समय के साथ आदिवासी स्त्रियों में भी परिवर्तन हुआ है। शिक्षा के प्रचार प्रसार के परिणाम स्वरूप आज आदिवासी स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में प्रगति के मार्ग पर प्रशस्त हैं। वे धार्मिक विरोध करने लगी हैं। वे मानसिक रूप से सुदृढ़ हुई हैं और उनमें नवीन चेतना जागृत हुई है। सरकार द्वारा ऐसे कई विकास कार्यक्रमों की शुरुआत की गयी है जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से आदिवासी स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रौढ़ शिक्षा, परिवार नियोजन, स्वरोजगार योजना, महिला मण्डल तथा महिला उद्यमियों के लिए वित्तीय सहायता आदि, इस तरह के कार्यक्रम हैं।[1]

नारी सृष्टि का आधार है। आज देश की आधी आबादी स्त्रियों की है और जब देश की आधी आबादी स्वतंत्रत नहीं रहेगी, उसे समस्त अधिकारों से वंचित रखा जाएगा और वह घर की चहारदीवारी में बन्द रहेगी तो देश की प्रगति भी आधी ही रह जाएगी।

आधुनिकता का प्रभाव आज आदिवासी स्त्रियों पर भी परिलक्षित होने लगा है। आज वह भी अपने अधिकार को पहचानने लगी हैं। आज उन्हें अपनी आजादी में किसी प्रकार की रोकटोक स्वीकार नहीं है, यदि उनकी मान्यतायें भी उनके मार्ग में बाधा बनती है तो वह उसका विरोध करती हैं। रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में प्यारी अपनी जातीय अस्मिता से कहीं अधिक स्त्री होने पर खीज जाती है "मुझे उठा ले, अपने पास बुला ले। दुख दे देकर मुझे जिला–जिला कर न भार। मेरा पाप क्या है ? पराये मर्दों संग सोई हूँ तो तूने मेरी जाति ऐसी बनाई क्यों ?"[1] इस प्रकार इस उपन्यास में स्त्री अपनी मुक्ति के साथ अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के द्वन्द में झूल रही है। आज औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण गाँवों से लोगों का लगाव कम हो रहा है। आज गाँव उजड़ रहे हैं। इसका प्रभाव आदिवासी स्त्री पर भी पड़ा है। कुछ इसी प्रकार के स्त्री–मनोभावों का चित्रण उदयशंकर भट्ट के 'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास की पात्र रत्ना को गाँव का मोह आकर्षित नहीं करता "अन्दाज कुछ भी नहीं, मुझे बरसोवा से नफरत है। यहाँ के लोगों से इस काम से नफरत है दुनिया इतनी आगे बढ़ चुकी है और हम अभी बाप दादाओं की तरह मछली मार रहे हैं।[2] तेजी से बढ़ते विकास के साथ–साथ आज आदिवासी स्त्री अपना तालमेल बैठाने की चाहत रखती है। उदयशंकर भट्ट ने उपन्यास की पात्र रत्ना के माध्यम से यह चित्रित किया है कि एक आदिवासी स्त्री की भी अपनी इच्छायें तथा महत्वकांक्षाएं होती हैं–"मेरे हृदय में कितनी उमंगें भरीं, मेरा भी समाज में सम्मान हो, मैं भी बड़ी बन सकूँ मैं जब किसी सभा सोसायटी में किसी औरत को बोलते सुनती हूँ तो मेरा मन भी करता है कि काश मैं भी ऐसी होती।"[3] यहाँ पर उपन्यास की पात्र रत्ना अपने अन्दर छिपी हुई उमंगों को बाहर लाती है, वह इच्छा रखती है कि समाज में उसके सपनों को भी महत्व मिले। उसकी आवाज को भी सशक्त वाणी मिले उसकी सहभागिता भी समस्त स्थानों पर सुनिश्चित हो, आखिर उसकी भी अपनी स्वतंत्र अस्मिता हो। इस उपन्यास में स्त्री अस्मिता का प्रश्न उसके मान–सम्मान तथा सामाजिक न्याय से जुड़ा है। उपन्यास में एक अंचल का सहारा लेकर वहाँ की जनजातीय

जिन्दगी को समझा परखा गया। इसी प्रकार 'कचनार' उपन्यास में आदिवासी स्त्री के अस्तित्व का चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में सभी लालच एवं स्वार्थ से हटकर अपने मान सम्मान के लिए अधिक जागरुक दिखाई देते हैं। विशेष रूप से स्त्रियों में यह जागरुकता अधिक देखने को मिलती है। वह अपने स्वत्व को जिन्दा रखती है। उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र कचनार अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है। वह अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए कुछ भी करने को तैयार है–"मैं एक दासी हूँ, मैं आपकी, दादी की और अन्य सभीकी सेवा करूंगी किन्तु ऐसा अंगरखा भी नहीं बनूँगी कि जिसे जब चाहो उतार कर फेंक दो।"[5] स्त्री का आत्मसम्मान सर्वोपरि है। उपन्यास की पात्र कचनार अपने आत्मसम्मान और स्वाभिमान को मिटने नहीं देती है। इसके लिए वह अपने प्राणों को भी खतरे में डाल देती है। उपन्यास में यह पात्र सम्पूर्ण परिवेश में अपने वजूद को टटोलती है और अपने स्वाभिमान एवं स्त्रीत्व को बनाये रखती है।

शादी विवाह के मामलों में भी आज आदिवासी समाज की सोच बदली है। इस समाज में भी अब स्त्री–पुरुष अपनी पसन्द से विवाह करने लगे हैं। पुन्नी सिंह के उपन्यास 'सहराना' में सोना की माँ अंजनी काकी विचार करती हैं कि उनके जमाने में विवाह की बातें घर के बड़े बुजुर्ग ही करते थे, लेकिन अब समाज में परिवर्तन आ गया है। बच्चे अब स्वयं की पसन्द से ब्याह करने लगे हैं। सोमा जब चम्पा से ब्याह करने की इच्छा व्यक्त करता है तो अंजनी काकी विचार करती हैं कि "उनके जमाने में तो शादी–ब्याह की बातों को लेकर मोड़–मोड़ी नहीं खोलते थे। वास्तव में अब जमाना बदल गया है।"[6]

बदलते समय के साथ अब लोगों की सोच में भी परिवर्तन हो रहा है। आदिवासी स्त्रियों के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदल रहा है। मधुकांकरिया के उपन्यास 'खुले गगन के लाल सितारे' में मणि इन्द्र की बातों के सम्बन्ध में सोचती है–"बड़े बड़े शहरों में जो दिखाई पड़ता है, उसे ही सत्य मानकर मत बैठ जाओ अब समय परिवर्तित हो रहा है। लोगों की सोच बदल रही है। आने वाले समय में तुम देखना खेतों में पसीना बहाने एवं जीवन के संघर्ष में स्त्रियाँ ही सुन्दर कहलायेंगी। सुन्दर वह हर कोई जो अपने श्रम, ऊर्जा से और आत्मिक सौन्दर्य से दूसरों के संसार को भी सुन्दर बनाये।"[7]

पहले आदिवासी समाज में लड़कियों के जन्म पर खुशियाँ नहीं मनायी जाती थीं। लड़के एवं लड़कियों में भेद किया जाता था किन्तु आज आदिवासी समाज में भी लोगों की सोच में परिवर्तन आया है। ऐसा चित्रण पुन्नी सिंह के सहराना उपन्यास में देखने को मिलता है। इसमें उपन्यास की पात्र अंजनी काकी एक शहरी सरदारिन की प्रेरणा से अपनी सोच में परिवर्तन लाती है और पोती के जन्म पर खुशी व्यक्त करती हैं। पुन्नी सिंह इसका बड़ा ही रोचक वर्णन करते हैं–"अंजनी काकी ने सहराने की प्रथा तोड़ दी थी सहराने में ऐसा पहला मौका था जब किसी लड़की के होने पर ढपली बजी थी, ऐसा करने पर बुजुर्गों ने जहाँ अंजनी काकी का दबे स्वर में विरोध किया, वहीं कुछ महिलाओं द्वारा काकी के इस कार्य के लिए सराहना भी मिली। चम्पा ने जब यह देखा कि उसकी लड़की होने पर जब इस प्रकार जश्न हो रहा है तो उसका काकी के प्रति आदरभाव बढ़ गया।"[8] "काकी के मन में लड़कियों के प्रति ऐसा आदरभाव शुरू से नहीं था अभी कुछ समय पहले ही घाटी में उसका एक सरदार महिला से सम्पर्क हुआ था। वह सरदार लहना सिंह की माँ है। उसे सभी प्यार से मम्मी कहते हैं। इस बीच सहराने में मम्मी का अक्सर आना जाना होता है। वह जब आती है तब उनके साथ एक दो उनकी नातिने भी होती हैं। उनकी नातिने जिस तरह से उनके साथ खुश रहती हैं और जिस तरह से दादी का अपने नातिनों के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार होता हैं

वह इस घाटी में दुर्लभ है। मम्मी एवं उनकी नातिनों का प्रेम देखकर सभी प्रेरित हो उठते हैं। उसी से काकी के विचारों में भी परिवर्तन आया है।"[9] इस प्रकार शहरियों का प्रभाव आदिवासी स्त्रियों पर हुआ है। जिस प्रकार अंजनी काकी शहरी महिला के सम्पर्क में आकर अपने विचारों में परिवर्तन करती है उसी प्रकार यह प्रभाव अन्य स्त्रियों में भी देखने को मिलता है।

वर्तमान समय में आदिवासी स्त्रियाँ शहरी सभ्यता का अनुकरण कर रही हैं। वह शहर की स्त्रियों के सम्पर्क में आकर उन्हीं के जैसा व्यवहार करने लगी हैं। अब वह शहरी सभ्यता अपनाने लगी हैं। मैत्रेयीपुष्पा के उपन्यास ''झूला नट'' में सीलो की सास शहरी स्त्रियों पर क्रोधित हो उठती है और कहती है–"अब इस गाँव में भी शहरी औरतों ने अपनी दस्तक दे दी है और बवाल मचवा रही हैं, नही ंतो हमारे घर कलह होती ? आग लगे मैं भी होड़ कर बैठी। काये–काये की होड़ करूंगी ? वे तो अपने जनानों का नाम लेकर ऐसे पुकारती हैं जैसे किसी बच्चा को देख रही हैं।"[10] एक आदिवासी स्त्री का इस तरह बोलना अटपटा जरूर लगता होगा, किन्तु धीरे धीरे आधुनिकता का प्रभाव उन पर भी हावी हो रहा है। आदिवासी महिलायें अब घर की चहारदीवारी से निकलकर बाहर फैक्ट्रियों में काम करने लगी हैं। फैक्ट्रियों में काम करने के साथ ही वह सक्रिय रूप से आन्दोलनों में भी भाग लेती हैं। रमणिका गुप्ता के 'सीतामौसी' उपन्यास की सीता इसी तरह की पात्र है। "सीता यूनियन के प्रत्येक कार्यक्रम में सहभागी रहने लगी थी और सरकारीकरण के आन्दोलन के समय और बाद में भी वह लीडर बन गयी थी। आन्दोलन के दौरान उसे और सरस्वतिया दोनों को जेल काटनी पड़ी थी। झण्डा लेकर चलना हो पुलिस का सामना करना हो या ठेकेदारों को गरियाना हो, सभी कामों में सीता आगे रहती थी। इसके अतिरिक्त काम का विवाद हो या कम्पनी के बंटवारे की लड़ाई सीता ने सभी मसलों को सुलझाने की दक्षता हासिल कर ली थी। पुलिस से मुकाबला करने की उसके हौसले ने उसे आदर का पात्र बना दिया था। वह अब स्टाप मुन्सी एवं ठेकेदारों पर भी अपने रूआब झाड़ने लगी थी, यहाँ तक कि सरकारी मैनेजर भी उससे डरने लगे थे।"[11]

आज हर आदिवासी स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति सजग होना पड़ेगा एवं सीता जैसा बनना पड़ेगा। आज हर आदिवासी स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति सचेत होते हुए अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होगी तभी जाकर इन महिलाओं की दशा एवं दिशा में परिवर्तन हो सकेगा।

आधुनिक समाज का प्रभाव इनके जीवन पर होना इस बात से भी दृष्टिगोचर होता है कि सीता मौसी उपन्यास की पात्र सीता अपने पुत्र के जन्म पर उसका आदिवासी नामकरण परम्परानुसार वर्ष दिन या महीने पर न रखकर शहरी नाम सुनील रखा। इस प्रकार अब इनमें भी जागृति उत्पन्न होने लगी है। वह समय अब दूर नहीं दिखाई देता जब इन स्त्रियों के जीवन में भी पूर्ण सवेरा होगा। अधिकांशतः आदिवासियों के निवास स्थल जंगल ही होते हैं, अब इन जंगलों पर भी उद्योगपतियों एवं पूँजीपतियों की निगाहें पड़ने लगीं। दीकुओं के प्रवेश से आदिवासियों में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन आने लगे हैं। इनके सम्पर्क में आकर आदिवासी अपनी मौलिकता खो रहे हैं। अब इनके रीति–रिवाजों एवं संस्कारों में भी परिवर्तन होने लगा है।

जंगलों के कटने एवं आधुनिकता के प्रभाव के कारण आदिवासी स्त्रियों का एक बड़ा समूह जंगलों से शहर की ओर जाने को विवश है। यह महिलायें दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता जैसे महानगरों में जाकर आया एवं ईंट भट्टों में मजदूरी का कार्य करती हैं। इन स्थलों पर इनका शारीरिक एवं मानसिक शोषण होना आम बात है। रमणिका गुप्ता अपने उपन्यास सीता–मौसी में

वांची की आदिवासी महिला के शोषण का वर्णन बड़ी ही बेबाकी से करती है। "राखी की आदिवासी स्त्रियाँ अधिकतर अकेले ही काम करने आती थीं। छैलों का दल झारखण्डी नेता संत की अमुआई में बाहरी–भीतरी का प्रश्न उठाकर इन महिलाओं में भय व्याप्त करता था और इनका शोषण करता था। सम्पूर्ण कोयलरी क्षेत्र में मुख्य रूप से महिलाओं एवं प्रेमी युगलों में एक दहशत सी हो गयी थी। यह नेता स्त्रियों को चोर एवं बदचलन घोषित कर उनका शोषण करते थे। इस क्षेत्र के स्थानीय लोगों ने इसे एक नये हथियार के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। कोयलरी में ठेकेदारों एवं पहलवानों की दादागिरि चलती थी। अपराधियों एवं सूदखोरों ने भी यहाँ आकर शोषण करना प्रारम्भ कर दिया था। कोयलरियाँ सरकारी होने के बाद वही ठेकेदार पैटी ठेकेदार और पहलवान या तो कोयलरियों में मुंशी, सुपरवाइजन नौकरियों में घुस गये या हाजिरी बाबू की। इन्होंने मजदूर जमात का अलग तरीके से शोषण किया। सूदखोरी, दारू की भट्टी, पुलिस और बन्दूक का भय दिखाकर यह रंगदारी की प्रक्रिया में कभी जबरन सूद तो कभी चंदा वसूलने लगे।"[12]

पुरुष वर्ग को अपनी सोच में परिवर्तन लाना होगा जब तक यह वर्ग महिलाओं को मानव नहीं समझेगा तब तक स्त्री मानसिक एवं शारीरिक रूप से शोषित होती रहेगी।

आज एक आदिवासी स्त्री यह समझ चुकी है कि उसकी आर्थिक स्थिति तब तक नहीं सुधरेगी जब तक उसमें शिक्षा का विकास नहीं होगा। रमणिका गुप्ता के उपन्यास सीता मोसी में मौसी अपने भाई के बेटे के लिए विचार करती है। "फुआ का सपना था, मोहना पढ़ लिखकर खूब बड़ा आदमी बने। पुलिस का हवलदार न सही तो कोलिया का मुंशी या ठेकेदार जरूर बने। खेत में नहीं खटेगा मेरा मोहना। खेत हमनी के पेट भी तो नहीं भर सकता है, न ही पढ़ाई का खर्च दे सकता है। महुआ चुनकर, सखुआ बीनकर, कुसुम फूल सिहनाकर कैसे सालों भर पेट भरते ? अब महुआ सखुआ पर भी तो बहुतों की नजर लगी रहत है। सिपाही से लेकर मुखिया नेता, रंगदार सभी को हिस्सा देव पड़त है। खेती से भी नहीं पूरा परत है। तब भी हजारी बाग आकर खटे के पड़ ही जात है। तब काहे ले करेंगे खेती बारी ? कुछ भी नहीं धरा इन खेतिन मा। टमाटर मूली उगावो, दस कोस शहर में बेचन जाओ तब भी दस रुपया बैल गाड़ी उठा लेत है। व्यापारी बेचारी झुमरा वाली तो चुरचू पहाड़ से आवत है। चार आना किलो टमाटर का भी नहीं मिलत। मेहनत खाद बीज पानी भी तो लौटता न है। क्या रखा है इस खेती मा ? इससे अच्छा तो है कोलियरी में जायके कहीं कोई काम धर ले।"[13]

अब इन महिलाओं को यह बात समझ में आ चुकी है कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा वह आगे बढ़ सकती है। यही कारण है कि वह अपने बच्चों को पढ़ने हेतु शहर भेजने लगी है, जिससे आने वाले समय में उन्हें परेशानियों का सामना न करना पड़े। जमाने में परिवर्तन के साथ–साथ अब इनमें भी परिवर्तन आने लगा है। आदिवासी समाज प्रारम्भ से ही अन्धविश्वासों में बंधा हुआ है। इसका प्रमुख कारण है अशिक्षा और इसी अशिक्षा से उनमें कुरीतियाँ, उनका शोषण एवं अज्ञानता आदि का जन्म होता है। समय के साथ–साथ इनमे भी जागृति आयी है।

आदिवासी महिलायें बहुत कम शिक्षित हैं। आदिवासी स्त्रियों को यह बात समझनी होगी कि जिस समाज में स्त्रियाँ जितनी साक्षर होंगी वह समाज उतना ही अधिक प्रगति करेगा।

शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके अभाव में स्त्रियाँ कभी भी सशक्त नहीं हो सकतीं। आदिवासी समाज में यह धारणा है कि लड़की को तो पराये घर जाना है और वहाँ जाकर बर्तन चूल्हा ही करना है इसलिए वह लड़कियों के लिए शिक्षा की उपेक्षा करते हैं किन्तु समय परिवर्तन

होने के साथ अब उनमें भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। अब आदिवासियों की लड़कियां भी शिक्षा ग्रहण करने लगी हैं। एम0वीरप्पा मोइलि के उपन्यास 'कोट्टा' की पात्र पीचलू जो कि एक मिसाल के रूप में सामने आती है।वह शिक्षा ग्रहण कर सफलता के मार्ग पर अग्रसर होती है और नाम कमाती है। "कोट्टा में रहकर प्राइवेट परीक्षाएं पास करने वाली पीचलू सम्पूर्ण कोटा निवासियों की मार्गदर्शिका बन चुकी है। उसने अब मैसूर विश्वविद्यालय के पत्राचार पाठ्यक्रम में प्रवेश ले लिया है। अब मलय्या के सारे कार्यों की जिम्मेदारी उसी की है। 'कोरग समग्र अभिवृद्धि संघ' का सिलसिलेवार हिसाब लिखना अधिकारियों से पत्राचार आदि से सम्बन्धित सभी कार्य अब उसी के द्वारा किए जा रहे हैं।"[14]

पीचलू की ही तरह अब सभी स्त्रियों को पढ़लिखकर शिक्षित होना होगा। इससे इनका तो मान बढ़ेगा ही साथ में परिवार और समाज का मान भी बढ़ेगा।

अब यह बात भी आदिवासी स्त्रियों के समझ आ चुकी है कि यदि उनके बच्चे शिक्षित नहीं होंगे तो उनका भविष्य अंधकार में होगा। यही कारण है कि स्त्रियाँ अब खुद को शिक्षित करने के साथ ही अपने बच्चों को भी शिक्षित करने लगी हैं और अब इनके बच्चे भी पढ़ लिखकर आगे बढ़ने लगे हैं।

आज लगभग समस्त क्षेत्रों में स्त्री अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। चाहे दफ्तर हो, उद्योग हो या राजनीति का अखाड़ा ही क्यों न हो स्त्री सभी क्षेत्रों में पुरुष के बराबर कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है।

पुन्नी सिंह के 'सहराना' उपन्यास में सोमा अपनी पुत्री को इसलिए शिक्षित करना चाहता है कि उसकी पुत्री पढ़ लिखकर कुछ बने और सहराने में फैले हुए अज्ञान एवं अंधकार को समाप्त कर दे।

"इन तीन चार वर्षों में अब उसकी बेटी की उम्र पढ़ने के लायक हो गई है सभी से उसने इस सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करना प्रारम्भ कर दिया और तभी से उसे इस बात का भी आभास होने लगा है कि घाटी का यह अन्धकार लगातार गहरा होता जा रहा है। इस अन्धेरे को समाप्त करने के लिए अभी तक जो कुछ भी किया गया है वह मात्र एक तमाशा बनकर रह गया है। यही कारण हे कि अब घाटी के 'सहरियों' को शिक्षा जैसी महत्वपूर्ण चीज से मोह नहीं रहा है। वह अब शिक्षा के प्रति पूर्णरूप से उदासीन हो गये हैं और उनकी इस प्रकार उदासीनता को देखकर बीते दिनों में सोमा की पीड़ा निरन्तर बढ़ रही है।"[15] इस प्रकार महिलाएँ अब यह समझ चुकी हैं कि शिक्षा के अभाव में उनका जीवन सुखमय नहीं हो सकता है। वह अब अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहती है, जिससे उनके आने वाले भविष्य में सुधार आ सके। अब आदिवासी, लड़के एवं लड़कियों की शिक्षा में भेद न कर लड़कियों को भी शिक्षित किये जाने पर जोर दे रहे हैं। यद्यपि परिवर्तन तो आया है किन्तु उनकी गति अभी मन्द है किन्तु आने वाले समय में सुधार निश्चित रूप से आयेगा और परिवर्तन की गति भी तीव्र होगी।

आदिवासियों के लिए पढ़ना–लिखना अब नितान्त आवश्यक हो गया है। अब उन्हें आभास हो गया है कि यदि वे शिक्षित होंगे तो उनके भोलेपन का कोई भी व्यक्ति फायदा नहीं उठा सकेगा। किसी भी प्रकार की मुश्किल क्यों न हो आदिवासी स्त्रियों को शिक्षित होना ही होगा।यह अत्यन्त दुख का विषय है कि जिसने प्रवेश लिए भी है वह पढ़ने नहीं जाते वे ठीक ढंग से पढ़ नहीं पाते। आदिवासी बच्चों के स्कूल में उपस्थिति तथा पढ़ाई की गुणवत्ता में गुणात्मक सुधार लाने की आवश्यकता है। अब आदिवासी समाज में भी स्त्रियाँ बुद्धिजीवी, प्रोफेसर व्याख्याता, शिक्षक, लेखक आदि बनने लगी हैं। समय के साथ–साथ

स्त्रियाँ जागरुक हो चुकी हैं। उन्होंने सफलता की सीढ़ियाँ चढ़कर कीर्ति को अर्जित किया है।

आदिवासी स्त्री को अब अपने अधिकार की लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। अब स्त्रियों को नेतृत्व करना होगा। स्त्री यदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नया मुकाम हासिल करना चाहती है तो उसे छुई–मुई नाजुक, शर्मीली, त्यागी, तपस्विनी, सती–साध्वी की भंगिमा तोड़कर और उपभोक्ता सामग्री सी बाजार में बिकाऊ वस्त्र की तरह चकाचौंध भरी मनमोहक दुनिया को नकार कर एक मेहनती अन्याय न सहने वाली, स्वावलम्बी, स्वतन्त्र और अपने प्रजातान्त्रिक अधिकारों को उपभोग करने वाली नारी की भूमिका अदा करनी होगी, तभी जाकर उसे अपने समस्त अधिकारों की प्राप्ति होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. महिलाओं के मौलिक अधिकार, रतन लाल गौरा, राधा गोविन्द पब्लिकेशर्स, जयपुर, 2009, पृ0 2
2. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 2014, पृ0 47
3. सागर लहरें और मनुष्य, उदयशंकर भट्ट, आत्माराम एण्ड सन्स, 2019, पृ0 91
4. वही, पृ0 146
5. कचनार, वृन्दावन लाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ0 28
6. सीता–मौसी, रमणिका गुप्ता, ज्योति लोक प्रकाशन, 2000, पृ0 35
7. खुले गगन के लाल सितारे, मधु कांकरिया, किताब घर प्रकाशन, प्रयागराज, 2008, पृ0 142
8. सहराना, पुन्नी सिंह, हिन्दी बुक सेक्टर, 2010, पृ0 88
9. वही, पृ0 89
10. झूला नट मैत्रेयी, पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, 2018, पृ0 145
11. सीता–मौसी, रमणिका गुप्ता, ज्योति लोक प्रकाशन, 2014, पृ0 96
12. वही, पृ0 65
13. वही, पृ0 96
14. कोट्टा, एम0 वीरप्पा मोमिली, सिद्धार्थ प्रकाशन, 2009, पृ0 233
15. सहराना, पुन्नी सिंह, हिन्दी बुक सेक्टर, 2010, पृ0 213